

जैव विकास का बढ़ता कारवां

माधव गाडगिल

1. जीवधारियों के कुलों को बनाए रखती है विविधता

जंतुओं, सम्बंधियों, समूहों, जीवधारियों के पूरे कुलों, ऐसे कई स्तरों पर प्राकृतिक चयन के माध्यम से जीवजगत की विविधता खिलती रहती है।

मेरे गुरु, पक्षी विशेषज्ञ सलीम अली, बचपन में शिकार के बहुत शौकीन थे। नाना प्रकार के पक्षियों को मारकर, भूनकर चट कर जाते थे। इस शौक के चलते ही उन्होंने पक्षियों के जीवन का सूक्ष्मता से निरीक्षण करना शुरू किया था और अपने अवलोकनों का रिकॉर्ड रखने लगे थे। जब सलीम अली स्कूली विद्यार्थी थे, वे नर गोरेया का शिकार करने लगे। घोंसले पर शान से बैठे नर को निशाना बनाना आसान होता था। एक नर को खा लिया तो दूसरे दिन सवेरे उस घोंसले पर दूसरे नर को बैठा पाया। इस तरह एक के बाद एक चार नर मारे गए। सलीम अली ने लिखा है कि इसका मतलब यह होता है कि कई नरों को प्रजनन का मौका ही नहीं मिल पाता। मौका पाते ही वे आगे आ जाते हैं। वे स्वेच्छा से ब्रह्मचर्य को नहीं अपनाते हैं।

प्राकृतिक चयन का सिद्धांत भी यही दर्शाता है। प्रत्येक जीवधारी की प्रवृत्ति होती है कि वह स्वयं की सुरक्षा के साथ-साथ ही अपनी अगली पीढ़ी के निर्माण में योगदान दे। ब्रह्मचर्य स्वेच्छा से नहीं आता, किसी जीवधारी पर थोप दिया जाता है। किंतु इसकी पुष्टि स्वजन-चयन के सिद्धांत से होती है। अपने स्वजनों यानी रिश्तेदारों को लाभ पहुंचाने के लिए चींटियों, मधुमक्खियों जैसे जंतु अपनी मर्जी से ब्रह्मचर्य स्वीकार कर लेते हैं। किंतु क्या प्राकृतिक चयन का दायरा केवल स्वहित और स्वजनहित तक ही सीमित होता है? क्या प्राकृतिक चयन सम्बंधी-परिवार से भी बड़े समूहों के स्तर पर हो सकता है? ऐसे कौन-से उच्चतर स्तर हैं जिन पर प्राकृतिक चयन कारगर हो सकता है?



इस संदर्भ में हाल ही में एक रोचक अध्ययन किया गया है - पानी पर स्केटिंग करने वाले कीटों (वॉटर स्केटर) पर। पानी की सतह एक पतली झिल्ली होती है। इस झिल्ली में छेद किए बिना ये कीट लम्बे-लम्बे उग भरते हुए पानी पर फिसलते हुए मज़े से चलते हैं। ये झुंडों में रहते हैं और पोखरों, तालाबों, नदियों के ठहरे हुए पानी में रहने वाले या दुर्घटनावश पानी में गिरने वाले कीटों का शिकार करते हैं। नर-मादा दोनों अपने-अपने इलाके की सुरक्षा के प्रति बहुत सतर्क रहते हैं। जैसे ही किसी कीट को लगता है कि उसके इलाके में कोई दूसरा कीट घुस रहा है तो वह पानी की सतह पर पैर पटककर लहरों पर कंपन करके यह संदेश प्रसारित करता है 'दूर हटो ऐ दुनियावालों यह इलाका हमारा है'। किंतु प्रजनन काल में ये कुछ अलग ही संदेश देते हैं। यदि नर के 'दूर हटो' संदेश का जवाब न मिले तो वह पहचान जाता है कि घुसपैठ करने वाली कोई मादा है। तब वह थोड़ा आगे खिसककर लहरों में कंपन के माध्यम से ही प्रेम-संदेश भेजता है - 'ज़रूरत है, ज़रूरत है, ज़रूरत है एक श्रीमती की'। कुछ मादाएं इसका जवाब कंपन द्वारा ही देकर जता देती हैं - 'जा, जा, रे जा बालमवा'। कुछ मादाएं प्रेम-संदेश को स्वीकार कर लेती हैं,

और नर और मादा के मिलन की बेला आती है।

किंतु मामला हमेशा इतना सहज-सरल नहीं होता। कुछ नर पैदाइशी गुस्सैल और झगड़ालू स्वभाव के होते हैं। वे मादा की 'हां' का इंतज़ार किए बिना उस पर टूट पड़ते हैं; दूसरे नर की मादा को छीन लेते हैं। इस आपाधापी में ये तामसी नर बाज़ी मार जाते हैं और उन्हें जल्दी मादा मिल जाती है। ये तामसी गुण आनुवंशिक होने के कारण हर पीढ़ी में बढ़ते जाते हैं। किंतु इसका यह मतलब भी नहीं है कि सारे वॉटर स्केटर नर झगड़ालू होते हैं। बहुत सारे नर शांतिप्रिय भी होते हैं। ऐसा क्यों? जिन समूहों में तामसी प्रवृत्ति की अति होने लगती है वहां से मादाएं उड़कर ऐसे समूहों में चली जाती हैं जहां शांतिप्रिय नर अधिक होते हैं। फिर ऐसे समूहों में खूब प्रजनन होता है और स्वाभाविक रूप से शांतिप्रिय नर काफी संख्या में बने रहते हैं।

इसका मतलब यह हुआ कि प्राकृतिक चयन के दौरान व्यक्तिगत स्तर पर तामसी प्रवृत्ति भले ही जीत जाती हो, किंतु मादाओं को शांतिप्रिय नरों के समूह अधिक पसंद होने के कारण समूह के स्तर पर संघर्ष को सीमित कर दिया जाता है और संतुलन बना रहता है।

कीटों में समूहों के स्तर पर कुछ ही पीढ़ियों में दिखाई देने वाला प्राकृतिक चयन का एक उदाहरण हमने ऊपर देखा। इसी प्रकार के उदाहरण जैव विकास की लाखों वर्षों की यात्रा के दौरान प्रजातियों के स्तर पर भी देखे जा सकते हैं। एक उदाहरण देखिए।

शुरुआत में जीवधारियों में प्रजनन की विधि यह थी कि एक बैक्टीरिया कोशिका का विभाजन होकर दो कोशिकाएं बनती थीं। इस तरह अगली पीढ़ी बन जाती थी। इसमें नर-मादा, दो प्राणियों के मिलन वगैरह का कोई झंझट नहीं था। लैंगिक प्रजनन कहीं अधिक जटिल मामला है। इसे अपनाने वाले जीवधारियों में प्रजनन की गति आधी हो जाती है क्योंकि केवल मादाएं ही अगली पीढ़ी को जन्म दे सकती हैं। यह प्रक्रिया जंतुओं में ही नहीं, वनस्पतियों में भी देखी

जा सकती है। फूलों में बीजांड (मादा जन्यु) भी होते हैं और पराग कण (नर जन्यु) भी। पराग कण मुफ्त में तो बनते नहीं। पराग कण बनाने का मतलब होता है उस वनस्पति में बीजांडों का उत्पादन कम से कम आधा हो जाता है। इसके अतिरिक्त, परागण में मदद करने वाले कीटों को आकर्षित करने के लिए मकरंद का उत्पादन भी करना पड़ता है। फिर भी अधिकांश उन्नत प्रजातियों में लैंगिक प्रजनन ही नज़र आता है। इन प्रजातियों को लैंगिक प्रजनन प्रणाली से निश्चित ही व्यक्तिगत स्तर पर तो फायदा नहीं होता है। उलटे, व्यक्तिगत स्तर पर तो प्रजनन की क्षमता में कमी का ही सामना करना पड़ता है। फिर लैंगिक प्रजनन की प्रणाली क्यों चली आ रही है?

व्यक्तिगत स्तर पर प्रजनन क्षमता में कमी हो जाने की समस्या से निपटने के लिए कई फूलधारी पौधे केवल मातृजनित, अलैंगिक प्रजनन प्रणाली ही बनाए रख सकते हैं। घास, सूरजमुखी और गुलाब के कुलों में ऐसे उदाहरण देखे गए हैं, किंतु उनकी संख्या सीमित है। ऐसे मातृजनित, अलैंगिक प्रजनन करने वाले समूह प्रजातियों के स्तर पर ही पाए जाते हैं। जीवधारियों के किसी पूरे कुल के मातृजनित होने की जानकारी नहीं है। इसका मतलब यह है कि जैव विकास के दौरान मातृजनित प्रजातियां बन भी गईं तो वे अधिक समय तक अपना अस्तित्व बनाए रखने में



असमर्थ होती हैं। उनसे नई-नई शाखाएं नहीं बनती हैं। अलैंगिक प्रजातियां बनती हैं और कुछ समय के बाद समाप्त हो जाती हैं। पूरे कुल और उसके ऊपर के स्तर के छन्ने से गुज़रने पर केवल लैंगिक प्रजनन करने वाले समूह बचे रहते हैं। मातृजनित जीवधारी चाहे नर जन्युओं के उत्पादन से बचते हों और दुगनी गति से प्रजनन कर सकते हों, मगर लैंगिक प्रजनन करने वाली प्रजातियां ही लम्बे समय तक बने रह कर नए कुलों का निर्माण कर सकती हैं।

लैंगिक प्रजनन की इस प्रकार जीत होने का राज़ यह है कि भिन्न-भिन्न गुणधर्मा वाले नर और मादा जीवों के मिलन

से नए-नए गुणधर्म लगातार प्रकट होते रहते हैं। सभी जीवधारियों को परिस्थिति की नई-नई चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। इन चुनौतियों में एक प्रमुख चुनौती है जल्दी-जल्दी बदलते रहने वाले बैक्टीरिया और वायरसों के हमले। इन सूक्ष्म शत्रुओं से लड़ने के लिए नए-नए हथियारों की आवश्यकता होती है। और ये हथियार बनते हैं संयोगवश उभरने वाले उत्परिवर्तनों (म्यूटेशन्स) से और उनके विविध मिश्रणों से। लैंगिक प्रजनन में हर पीढ़ी में ऐसे उत्परिवर्तन और उनके अनगिनत मिश्रण बनते रहते हैं। इनमें से कुछ उत्परिवर्तन बैक्टीरिया और वायरसों के नए रूपों की अचूक तोड़ होते हैं। इस प्रकार से लैंगिक प्रजनन के माध्यम से लगातार विविधता का निर्माण करते हुए और उसके बल पर जीवटता के साथ बने रहने वाले कुनबों से ही नए कुल प्रकट होते हैं।

फूलों-तितलियों का आपसी सहयोग, हमला करने वाले बैक्टीरिया और वायरसों से वनस्पतियों और जंतुओं का संघर्ष जैसी विविध प्रक्रियाओं से गुजरते हुए जीवजगत पृथ्वी पर फलता-फूलता जाता है। अरबों वर्षों में बने आपसी सम्बंधों से जीवजगत की विविधता बढ़ती रही है। इस जैव विविधता से ही मानव कुल उपजा। मानव को पीढ़ी-दर-पीढ़ी यह जैव विविधता सहारा देती आई है। इस अनमोल धरोहर को सुरक्षित रखना ही मानव की सबसे बड़ी नैतिक ज़िम्मेदारी है।

2. जारी है स्वार्थ का सफर

जीवधारियों में प्राकृतिक चयन के ज़रिए कोई एक भूमिका निभाने के लिए उपजी विशेषता कालांतर में एकदम अलग संदर्भ में कमाल दिखाने लगती है और जैव विकास की धारा कई मोड़ लेते हुए बहती रहती है।

बसंत ऋतु के आते ही धरती विविध रंगों से रंग जाती है - लाल, पीले, सफेद, नीले, गुलाबी रंग के फूलों में धरती का श्रृंगार करने की होड़ लग जाती है। इन फूलों के रस का स्वाद चखने के लिए आते हैं तमाम रंग-बिरंगे पक्षी। यह रंगभरी दुनिया आई कहां से? यही है जीवजगत में नए-नए चमत्कारों के प्रकट होने, शिकारी और शिकार के संघर्ष,

नर-मादा व फूलों और पक्षियों के आपसी सहयोग की रोचक कहानी।

हम सूर्य की आराधना करते हुए कहते हैं, “तेरी कोटि-कोटि किरणें अग्नि के बाण हैं, अमृतकण बनकर अणु-अणु को प्रकाशित करते हैं।” पृथ्वी और पानी इन दो तत्वों से तीसरे तत्व प्रकाश कणों की जुगलबंदी लगातार चलती रहती है। एक ओर जहां प्रकाश कणों की ऊर्जा का पान करने पर अणुओं-परमाणुओं की संरचना बदलती है वहीं ये अणु-परमाणु किरणों को मोड़ते हैं, उनके रंगों को बदल डालते हैं। हम आकाश के बदलते रंगों को देखकर अचंभित होते हैं। पृथ्वी पर भी काली, भूरी, पीली, लाल मिट्टी और रंगीन स्फटिक पत्थर पाए जाते हैं। किंतु सृष्टि को सही अर्थों में रंगों से सजाया है जीवधारियों ने।

जीवजगत की चेतना का मूल आधार सूर्य का प्रकाश है। वनस्पतियों का हरा रंग क्लोरोफिल सूर्य के प्रकाश की ऊर्जा का उपयोग करते हुए पानी के अणुओं को तोड़ता है और इन्हें कार्बन डाईऑक्साइड के साथ जोड़कर शर्करा बनाता है। इस प्रक्रिया में से ऑक्सीजन निकलती है। यह गैस बहुत खुराफाती है। यदि इसके साथ सावधानी न बरती जाए तो यह आग लगा सकती है। ऑक्सीजन से जैविक क्रियाओं की रक्षा करने के लिए लाल-पीले रंग के कैरोटिनॉइड्स अणुओं का विकास हुआ। किंतु ऑक्सीजन से बचाव करने के बाद भी एक खतरा बना रहता है।

यह खतरा है सूर्य के प्रकाश में पाई जाने वाली पराबैंगनी (अल्ट्रावायलेट) किरणों का। इन किरणों के प्रभाव से डीएनए के अणुओं की टूट-फूट होती है; ये अणु तो आनुवंशिकी का आधार हैं। पराबैंगनी किरणों से बचाव के लिए कवच के रूप में जीवधारियों में नीले-जामुनी एन्थोसायनिन्स का उत्पादन शुरू हुआ। किंतु यह कवच शत-प्रतिशत सुरक्षित न होने के कारण कुछ टूट-फूट तो हो ही जाती है। इस टूट-फूट की मरम्मत करने के लिए डीएनए की एक सुरक्षित प्रतिलिपि की आवश्यकता होती है। ऐसी प्रतिलिपि सुरक्षित रखने के लिए जीवधारियों ने एक अचूक उपाय खोजा। यह उपाय था नर और मादा के सहयोग से लैंगिक प्रजनन। इस उपाय से उपजा रसराज श्रृंगार।

इस सारी आपाधापी के कारण साढ़े तीन अरब वर्षों पहले विकसित आदिम सायनोबैक्टीरिया से लेकर कार्ई, देवदार और बरगद तक सभी क्लोरोफिलयुक्त जीवधारियों में कैरोटिनाइड्स और एन्थोसायनिन के अणु पाए जाते हैं। केवल इतना ही होता है कि उनके लाल, पीले, नीले और जामुनी रंग क्लोरोफिल के हरे रंग के नीचे छुप जाते हैं। प्रारंभिक जीवधारियों में नर और मादा जन्तुओं का मिलन करवाने के लिए जलचर वनस्पतियों को पानी की और थलचर वनस्पतियों को बहती हवा की आवश्यकता पड़ती थी। प्रकृति हवा और पानी को बहाती रहती है। अतः इन्हें आकर्षित करने की कोई आवश्यकता नहीं होती थी। इसीलिए शुरुआती समय के जीवधारी रंगों से सजे हुए नहीं थे।

किंतु हवा के झोंकों से पराग कणों को सही जगह पहुंचाने के लिए अनगिनत परागकण बरबाद करना पड़ता था। आज भी मक्का जैसे पौधों को, जिनमें हवा से परागण होता है, अनगिनत परागकणों का उत्पादन करना पड़ता है। इस कमी को पूरा करने का काम उठाया वनस्पतियों के सहयोगी जंतुओं, कीटों, पक्षियों आदि ने। ये पराग कणों को बरबाद किए बिना उन्हें अचूक ढंग से एक पौधे से दूसरे पौधे तक पहुंचा देते हैं। इन्हें आकर्षित करने के लिए वनस्पतियों में फूलों का आविष्कार हुआ। वास्तव में फूलों की पंखुड़ियां पत्तियों के ही रूपांतरण हैं। पत्तियों में उपस्थित क्लोरोफिल के आवरण को हटाकर फूल एन्थोसायनिन्स को सामने लाते हैं और रंगीन हो जाते हैं। फूलों से ही बनते हैं फल और बीज।

बीजों का बिखराव भी ज़रूरी होता है ताकि सब बीज एक ही स्थान पर न पड़े रहें। इस बिखराव के लिए फल कभी पानी की मदद लेते हैं तो कभी हवा की, तो कभी जंतुओं की। सेमल के फूलों का लाल रंग परागण



करने वाले पक्षियों को ललचाता है किंतु उसके बीज नरम रूई के समान अपने रेशों की सहायता से हवा की सवारी करते हुए दूर-दूर तक पहुंचते हैं। आम का बौर रंगों का सहारा न लेते हुए अपनी सुगंध से परागणकर्ता कीटों को आकर्षित करता है। कैरी जब तक कच्ची होती है तब तक हरी साड़ी पहन कर पत्तियों में छुपी रहती है किंतु पकते ही लाल-पीले वस्त्र पहन कर चमगादड़ों को दावत देती है कि आओ, मुझे खाओ और गुठलियों को जंगल-जंगल फैलाओ।

देखिए, जीवधारी निकले कहां से और पहुंच कहां गए। ऑक्सीजन से, पराबैंगनी किरणों से सुरक्षा के लिए कैरोटिनाइड्स और एन्थोसायनिन्स का विकास हुआ। वे आज भी अपने कर्तव्य का पालन मुस्तैदी से कर रहे हैं, किंतु उनके रंगों का फायदा उठा कर प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया ने उन्हें नए-नए कामों पर लगा दिया - कहीं परागण के लिए फूलों को रंगने में तो कहीं बीजों के बिखराव के लिए फलों को रंगने में। किंतु इसके साथ ही जंतुओं में रंग पहचानने की क्षमता भी तो ज़रूरी है। अतः हाथों में हाथ डाले वनस्पति जगत और जंतु जगत का समांतर विकास होता रहा। धीरे-धीरे हरी पत्तियों का रूपांतरण रंगीन पंखुड़ियों में हुआ और उसी समय जंतुओं में रंगों को पहचानने की क्षमता भी आने लगी। इससे पहले वे केवल काले और सफेद में ही भेद कर पाते थे।

रंगों को पहचानने की क्षमता आई कहां से? जंतुओं ने भी इसकी ज़िम्मेदारी फूलों को रंगने वाले कैरोटिनाइड्स को ही सौंप दी। कैरोटिनाइड्स, विटामिनों के भाई-बंधु ही

होते हैं और प्रकाश की किरणों से उनका अच्छा तालमेल होता है। कुछ विशिष्ट तरंग लंबाइयों की प्रकाश किरणों का परावर्तन करके वे स्वयं तो विविध रंग धारण करते ही हैं, किंतु जिस प्रकार क्लोरोफिल के अणु

प्रकाश की ऊर्जा का पान करते हुए अपनी संरचना ही बदल डालते हैं वैसी ही प्रक्रिया कैरोटिनोंइड्स में भी होती है। संरचना को बदलते समय अणुओं के स्तर पर होने वाली हलचल से जंतुओं में ऐसे पदार्थों का विकास हुआ जिनके कारण रंगों को पहचानने की क्षमता अस्तित्व में आई। अतः जो कैरोटिनोंइड्स फूलों और फलों में रंग भरते हैं वही जंतुओं को इन रंगों को देखने की क्षमता भी प्रदान करते हैं।

किंतु ऐसा भी नहीं है कि कैरोटिनोंइड्स के अणु केवल फूलों और फलों को ही रंगते हैं, वे जंतुओं में भी रंग भरते हैं। ऐसा ही एक अनोखा पक्षी है नदियों और समुद्र के किनारे पाया जाने वाला बोगहंस यानी फ्लेमिंगो। चार फीट ऊंचा यह पक्षी है तो मूल रूप से सफेद, किंतु शरीर पर पाए जाने वाले गुलाबी पिच्छों के कारण बहुत आकर्षक दिखाई देता है। लेकिन सभी फ्लेमिंगो गुलाबी रंग धारण नहीं कर पाते। इसका कारण यह है कि ये पक्षी स्वयं गुलाबी रंग का पदार्थ नहीं बना सकते। रंगों का निर्माण करने की जंतुओं की क्षमता सीमित होती है। वे केवल सूर्य के प्रकाश से बचाने वाले काले रंग मेलानिन का उत्पादन कर सकते हैं। केवल बैक्टीरिया और वनस्पति ही अन्य रंग बना सकते हैं। आहार से प्राप्त होने वाले कैरोटिनोंइड्स जैसे रंगीन अणुओं का उपयोग करके ही फ्लेमिंगो और अन्य जंतु अपने आप को रंगीन बनाते हैं। फ्लेमिंगो का प्रमुख आहार है गुलाबी रंग का एक झींगा। इन झींगों का गुलाबी रंग भी उधारी का ही होता है जो उन्हें उनके शाकाहारी भोजन से मिलता है। इस प्रकार, किसी एक पर्यावरण में मौजूद आहार श्रृंखला में से कैरोटिनोंइड्स घूमते-घामते फ्लेमिंगो तक पहुंचता है और वे गुलाबी रंग में रंग जाते हैं। स्वाभाविक है कि जो फ्लेमिंगो अधिक खा-पी कर मोटे-तगड़े हो जाते हैं उनके पंखों पर काफी लाली नज़र आएगी। कमज़ोर फ्लेमिंगो के पिच्छ गुलाबी न हो पाने के कारण उनका रंग फीका ही रह जाता है।

जैव विकास की धारा में इस कम-ज़्यादा लाल रंग का एक और फायदा उठाया जाता है। फ्लेमिंगो के स्वयंवर में नर और मादा बलवान जीवनसाथी खोजते हैं। जो अधिक लाल होगा वह अधिक बलवान भी होगा। इस बात का

पर्याप्त प्रमाण मिल चुका है कि अधिक गाढ़े लाल रंग वाले फ्लेमिंगो प्रेम में भी बाज़ी मार जाते हैं। साढ़े तीन अरब वर्ष पहले ऑक्सीजन से रक्षा करने के लिए विकसित कैरोटिनोंइड्स अणु आज इस प्रकार फ्लेमिंगो के वैवाहिक जीवन में एक अलग प्रकार की भूमिका निभा रहे हैं। इस प्रकार, स्वार्थ से भरा जैव विकास का यह सफर हमेशा जारी रहता है। विभिन्न क्षेत्रों में, और विशेष रूप से हमारी राजनीति में चल रहे स्वार्थ के प्रहसन पर कोई आश्चर्य नहीं होना चाहिए। यह तो जीवजगत की प्राचीन परम्परा है।

3. छोटे, फिर भी महान: सर्वव्यापी बैक्टीरिया

मानव चाहे जितना विध्वंस करे और चाहे पृथ्वी पर से अपने वंश को ही खत्म कर दे, फिर भी संसार के असली स्वामी बैक्टीरिया के साम्राज्य को कोई हानि नहीं पहुंचेगी।

यदि किसी से यह पूछा जाए कि आप कौन? तो शायद उत्तर मिलेगा, “इस शरीर को फलानाजी-ढिकानाजी कहते हैं”। यदि आगे यह पूछा जाए कि क्या यह शरीर एक ही जीव है? तो शायद फलानाजी-ढिकानाजी कहेंगे, “और नहीं तो क्या?” विज्ञान कहता है कि मनुष्य का शरीर स्वयं के होने का भान देने वाला एक जीव तो है ही, इसके अलावा हमारी त्वचा पर हर वर्ग सेंटीमीटर पर लगभग एक लाख बैक्टीरिया धमाचौकड़ी कर रहे हैं। और तो और, पेट में करोड़ों सूक्ष्मजीव ठसाठस भरे हुए हैं।

यदि फलानाजी-ढिकानाजी ने हाल में दही-चावल खाया होगा तो दूध को दही बनाने वाले लाखों बैक्टीरिया पेट में पहुंच गए होंगे, वे अलग। यदि हट्टे-कट्टे फलानाजी-ढिकानाजी का वज़न 100 कि.ग्रा. है तो इसमें से दस किलो तो शरीर के ऊपर और अंदर स्थित बैक्टीरिया का ही है। इन बैक्टीरिया की मदद के बिना फलानाजी-ढिकानाजी अपना भोजन पचा भी नहीं सकते। उन्होंने जो दही खाया था उसे बनाने के लिए दूध किसी भैंस ने दिया होगा। वह भैंस अपने चार खंडों वाले आमाशय में रहने वाले बैक्टीरिया की मदद के बिना घास को पचा नहीं सकती। दही-चावल का चावल भी बैक्टीरिया की मदद से ही पकता है। धान जैसी वनस्पति हवा में उपस्थित नाइट्रोजन का उपयोग नहीं

कर सकती। बैक्टीरिया हवा से नाइट्रोजन लेकर नाइट्रेट नामक यौगिकों में बदल देते हैं जिनका उपयोग धान और अन्य पौधे कर सकते हैं।

सारांश यह है कि बैक्टीरिया जैसे सूक्ष्मजीव पौधों और जंतुओं की मदद के बिना आराम से जीवित रह सकते हैं, किंतु पौधों और जंतुओं के लिए सूक्ष्मजीवों की मदद के बिना जी पाना असंभव है। पृथ्वी की सतह पर रहने वाले जीवधारियों की उत्पत्ति पौने चार अरब वर्ष पहले हुई थी। इसमें से पहले दो अरब वर्ष तो पृथ्वी की सतह पर सूक्ष्मजीवों का ही राज था। आदिम सूक्ष्मजीवों की कोशिकाओं में एक ही कक्ष होता है और उनमें कोई कोशिकांग नहीं पाए जाते हैं। उन्नत वनस्पतियों और जंतुओं की कोशिकाओं की रचना अधिक जटिल होती है। पौधों की कोशिकाओं में सूर्य के प्रकाश की ऊर्जा का उपयोग करने वाले क्लोरोफिल से भरे कोशिकांग पाए जाते हैं जिन्हें क्लोरोप्लास्ट कहते हैं। पौधों और जंतुओं दोनों की कोशिकाओं में ऊर्जा उपयोग का नियंत्रण करने वाले कोशिकांग - मायटोकॉण्ड्रिया - होते हैं।

क्लोरोप्लास्ट व मायटोकॉण्ड्रिया नामक इन कोशिकांगों का इतिहास बहुत रोचक है। एक सूक्ष्मजीव द्वारा दूसरे सूक्ष्मजीव को निगल लेने के फलस्वरूप ये बने हैं। क्लोरोप्लास्ट मूल रूप से वे सायनोबैक्टीरिया हैं जिन्हें अन्य सूक्ष्मजीवों ने निगल लिया है। इसी प्रकार से मायटोकॉण्ड्रिया मूल रूप से रिकेट्सिया जैसे बैक्टीरिया हैं।

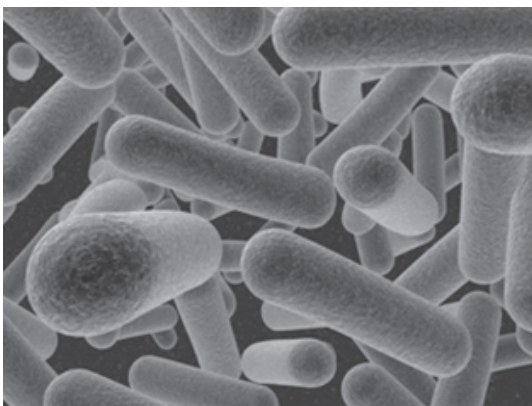
कोशिकांगों से सज्जित ऐसी उन्नत कोशिकाएं लगभग डेढ़ अरब वर्ष पहले पृथ्वी पर प्रकट हुई थीं। बहुकोशिकीय

जीवों का विकास होने में और एक अरब वर्ष लग गए।

इसका मतलब यह हुआ कि पृथ्वी पर शुरुआती सवा दो अरब वर्षों तक जीवन का वृक्ष केवल सूक्ष्मजीवों के रूप में ही था। हमें तो सूक्ष्मजीवों की दुनिया के बारे में पहली बार पता चल पाया सवा तीन सौ वर्ष पूर्व, सूक्ष्मदर्शी का आविष्कार होने पर। पिछले पचास-साठ वर्षों में ही यह ठीक-ठीक समझ में आया है कि जीवजगत कौन-से बुनियादी अणुओं से बना है। यह भी समझ बनी है कि जीवन के वृक्ष की छोटी-बड़ी शाखाएं और उपशाखाएं कैसे निकलती गईं। इस सबके परिणामस्वरूप जीवन के वृक्ष के बारे में हमारी धारणाएं पूरी तरह बदल गई हैं।

जैसे, चालीस वर्ष पहले तक यह मान लिया जाता था कि सूक्ष्मजीव का मतलब केवल बैक्टीरिया होता है। किंतु जब ऐसे सारे सूक्ष्मजीवों के आण्विक स्तर के घटकों की जानकारी उपलब्ध होने लगी तब समझ में आया कि सूक्ष्मजीवों के दो अलग-अलग जगत हैं - बैक्टीरिया और आर्किया। ये दो जगत, जीवन वृक्ष के तने से निकली हुई जीवजगत की दो प्रारंभिक महाशाखाएं प्रथम सवा दो अरब वर्षों तक बिना किसी रुकावट के बढ़ती रही थीं।

इसके बाद इन दोनों शाखाओं का ऐसा मिलन हुआ कि आर्किया के शरीर (कोशिका) में बैक्टीरिया समा गए और अधिक उन्नत तीसरी महाशाखा बन गई। पिछले डेढ़ अरब वर्षों में इन तीन महाशाखाओं से अनेक शाखाएं और उपशाखाएं निकलती रही हैं। अधिक विस्तार से देखें तो केंद्रकविहीन-आर्किया महाशाखा की सात, केंद्रकविहीन-बैक्टीरिया महाशाखा की छह, इस प्रकार कुल तेरह शाखाएं निकलीं। इसके विपरीत, केंद्रकयुक्त जीवों से केवल दस शाखाएं निकलीं। अर्थात् बैक्टीरिया और आर्किया में उन्नत जीवधारियों की तुलना में अधिक विविधता पाई जाती है। इतना ही नहीं, केंद्रकयुक्त जीवों की दस में से सात शाखाएं पूरी तरह से एककोशिकीय जीवों की हैं। शेष तीन शाखाएं हैं वनस्पति, जंतु और फफूंद। इन तीन शाखाओं के भी सारे सदस्य बहुकोशिकीय नहीं हैं, कई एककोशिकीय भी हैं। बहुकोशिकीय जंतु और वनस्पति सरलता से दिखते तो हैं किंतु शाखाओं के स्तर पर ऐसे बहुकोशिकीय जंतुओं और वनस्पतियों की



विविधता न के बराबर है, और जो है वह अभी हाल ही में विकसित हुई है। पृथ्वी पर जीवन के पौने चार अरब वर्षों के इतिहास में मात्र साठ करोड़ वर्ष पहले ही हम जैसे बहुकोशिकीय जीव अस्तित्व में आए हैं।

इसीलिए आज जीव वैज्ञानिक विश्वास के साथ यह कह रहे हैं कि पृथ्वी के असली मालिक तो बैक्टीरिया और आर्किया हैं। बहुकोशिकीय जंतु और वनस्पति संख्या की दृष्टि से उनकी तुलना में कुछ भी नहीं हैं। इतना ही नहीं, जिन परिस्थितियों में बहुकोशिकीय जंतु और वनस्पति जीवित रह ही नहीं सकते वहां सूक्ष्मजीव मज़े से रहते हैं। जब सूक्ष्मजीव पहली बार पृथ्वी पर प्रकट हुए उस समय का वातावरण और जलावरण आज से एकदम भिन्न था। उसमें ऑक्सीजन लगभग शून्य थी और कार्बन डाईऑक्साइड अधिक मात्रा में थी। अमोनिया, मीथेन, हाइड्रोजन सल्फाइड जैसी जो गैसों आज हमें विषैली लगती हैं वे भी काफी मात्रा में मौजूद थीं। जीवन की शुरुआत गहरे समुद्र में ऐसे स्थान पर हुई थी जहां दरारों में से उबलता हुआ लावा बाहर निकल कर आता था। अर्थात् बिलकुल प्रारंभिक सूक्ष्मजीवों (आर्किया) की उत्पत्ति एकदम अलग प्रकार के पर्यावरण में हुई थी। ऐसी कठिन परिस्थितियों में तप कर निकले हुए सूक्ष्मजीव कई ऐसे कठिन पर्यावरणों में रह सकते हैं जहां जंतुओं और वनस्पतियों के जीवित रहने की कल्पना भी नहीं की जा सकती। जैसे समुद्र की गहराई के दबाव में 200 डिग्री सेल्सियस पर उबलते पानी में। स्वयं के भोजन का निर्माण करने वाली क्लोरोफिलयुक्त वनस्पतियों के लिए प्रकाश ऊर्जा का एकमात्र स्रोत है, किंतु अनेक हुनरमंद सूक्ष्मजीव कई प्रकार के ऊर्जा स्रोतों का उपयोग करते हुए अपना पोषण तैयार कर लेते हैं। इन हुनरमंद जीवों में सबसे विलक्षण वे हैं जो पृथ्वी की सतह से सैकड़ों मीटर नीचे रहते हैं। ये चट्टानों के घटकों की पानी के साथ होने वाली रासायनिक क्रिया से निकलने वाली ऊर्जा से अपना पोषण जुटा लेते हैं। इस प्रकार की क्षमताओं के कारण सूक्ष्मजीवों ने विभिन्न परिवेशों पर धाक जमा ली है और यह दिखा दिया है कि वे किसी भी प्रकार की परिस्थिति से जूझते हुए फल-फूल सकते हैं।

सूक्ष्मजीव मानव के समान असहिष्णु नहीं हैं। हमने पृथ्वी पर जिस प्रकार और जिस गति से विनाश किया है उससे लग रहा है कि पृथ्वी पर मानव का अस्तित्व कभी भी समाप्त हो सकता है। किंतु मानव चाहे जितना हंगामा करे, परमाणु युद्ध भी कर ले तो भी अधिक से अधिक यह होगा कि हम अपने साथ अधिकांश बहुकोशिकीय जीवधारियों को ले डूबेंगे, किंतु सूक्ष्मजीव तो हर हाल में बने रहेंगे। किसी ने ठीक ही कहा है कि जिनका अतीत उज्ज्वल रहा है उनका भविष्य भी उज्ज्वल होता है। सूक्ष्मजीवों का अतीत तो उज्ज्वल रहा ही है, आज भी पृथ्वी पर उन्हीं का बोलबाला है। यह भी तय है कि मानव चाहे भस्मासुर बन जाए, सूक्ष्मजीवों के राज में किसी प्रकार की रुकावट नहीं आएगी।

4. विषाणु: सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म की ओर

अणुओं के सहकारी संगठनों की करामात का ही नाम जीवन है। जब इन्हीं में से कुछ चुलबुले घटक दूसरे संगठनों पर हमला करने की तैयारी करते हैं तब बनते हैं विषाणु।

हम सब जीवित अणु-परमाणुओं के संघ हैं, किंतु ये संघ अव्यवस्थित नहीं बल्कि अत्यंत सुगठित और कारगर हैं। जीवन की उत्पत्ति के समय से शुरू करके पिछले पौने चार अरब वर्षों में सारा जीवजगत प्रकृति के छन्ने में से छनता रहा है। इस प्रक्रिया में अक्षम जीवधारी कंकड़ों की तरह उठा कर बाहर फेंक दिए जाते हैं और वही बचे रहते हैं जो जीवित बने रहने, वृद्धि करने और प्रजनन में सक्षम होते हैं। इस प्रक्रिया से धीरे-धीरे बड़े-बड़े आकार के और अधिकाधिक जटिल जीवधारी बने हैं। किंतु जैव विकास की धारा केवल छोटे से बड़े की ओर, सरल से जटिल की ओर ही नहीं बहती है। आकार में बहुत छोटे, एक मिलीमीटर में दो हज़ार समाने वाले, सरल संरचना वाले बैक्टीरिया का राज आज भी कायम है, वे आज भी पूरी दुनिया में फैले हुए हैं। समुद्र की गहराइयों के कीचड़ में, ज़मीन की गहराई में स्थित चट्टानों में इनके अलावा अन्य कोई जीवधारी प्रवेश नहीं कर सकते।

इसके अलावा, जैव विकास की धारा विपरीत दिशा में, बड़े से छोटे की ओर भी बह रही है। इस धारा में बैक्टीरिया

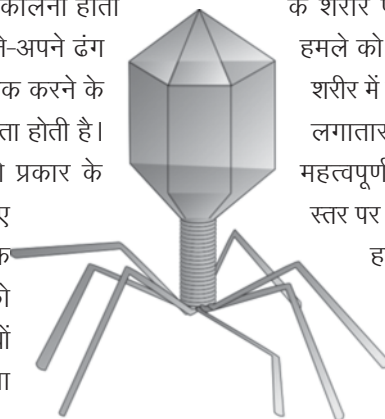
से भी बहुत छोटे, बहुत सरल संरचना वाले जीवधारी भी पैदा होते रहे हैं। ये हैं विषाणु यानी वायरस जो हमें साधारण सर्दी-जुकाम से लेकर एड्स जैसे भयानक रोगों की सौगात देते हैं। ये तो इतने सूक्ष्म होते हैं कि एक मिलीमीटर में पचास हज़ार समा सकते हैं। किंतु जैव विकास की अजब चाल इतने सूक्ष्म परजीवी जीवधारियों का निर्माण करके रुकी नहीं। इनमें से कई विषाणु हमारे आनुवंशिक अणुओं यानी डीएनए के स्थाई हिस्से बन गए हैं, और इन्हीं की मदद से हम जैसे स्तनधारी जीव गर्भपात के खतरे से बचे रहते हैं। ऐसे घुसपैठिए विषाणु न होते तो आज संसार में चूहे, छछूंदर, शेर, बाघ, हाथी, गेंडे, व्हेल, चमगादड़, बंदर, और मानव वगैरह भी नहीं होते।

यदि यह कहें कि समस्त जीवधारी अणु-परमाणुओं के सहकारी संघ होते हैं तो यह सवाल स्वाभाविक है कि क्या अतिसूक्ष्म विषाणु भी इसी प्रकार के सहकारी संघ हैं? जी हां, अन्य जीवधारियों के समान वे भी अणु-परमाणुओं के सहकारी संघ हैं, किंतु उनके समान परिपूर्ण, स्वयं-पूर्ण, आत्मनिर्भर संघ नहीं हैं। वे सजीव और निर्जीव की सीमा पर स्थित हैं। जीवधारियों के तीन गुणधर्म होते हैं - वृद्धि, व्यवहार और प्रजनन। सब जीवधारी अपने बल पर आकार में बढ़ते हैं, प्रजनन करके अपने समान जीवधारियों का निर्माण कर सकते हैं। इसके लिए उन्हें लगातार ऊर्जा की आवश्यकता होती है जो प्रकाश से या अन्य कार्बनिक अणुओं से मिलती है। इसके अलावा पानी और पोषक पदार्थों की भी आवश्यकता होती है और इन सबसे बने अपशिष्ट पदार्थों को शरीर से बाहर निकालना होता है। इस सारे व्यवहार में कई अणु अपने-अपने ढंग से योगदान देते हैं। इसको सफलतापूर्वक करने के लिए सही-सही जानकारी की आवश्यकता होती है। यह जानकारी न्यूक्लिक अम्लों के दो प्रकार के अणुओं में होती है। दो लटों वाले डीएनए में जानकारी का भंडार होता है तो एक लट वाला आरएनए इस जानकारी को आधार बना कर अमीनो अम्लों की कड़ियों को सही क्रम में जोड़कर प्रोटीन बनाता

है। इस काम के लिए आवश्यक ऊर्जा शर्करा के रूप में एटीपी के अणुओं से प्राप्त होती है। कोशिका के भीतर-बाहर आवश्यक पदार्थों को आने-जाने की अनुमति देने वाली कोशिका झिल्ली चिकनाई यानी वसा के अणुओं से बनती है। स्वतंत्र रूप से जीने के लिए जीवधारियों के लिए ये सारे पदार्थ होना अनिवार्य है। किंतु सूक्ष्म विषाणुओं के पास इतने सारे संसाधन नहीं होते।

फिर ये विषाणु हैं क्या और जीवित कैसे रहते हैं? सब जीवधारियों की हर कोशिका में आनुवंशिक सूचना का भंडार न्यूक्लिक अम्लों से बने डीएनए के अणु में लम्बी मालाओं के रूप में गूँथा हुआ होता है। किंतु सभी अणु माला में अपने निर्धारित स्थानों पर स्थिर नहीं रहते हैं। इनमें से कई चंचल प्रवृत्ति के होते हैं। जब न्यूक्लिक अम्लों के इस प्रकार के चंचल अणु प्रोटीन का आवरण चढ़ा कर घूमने लगते हैं तब बनते हैं विषाणु। उनका उद्देश्य होता है अन्य परिपूर्ण जीवधारियों की किलाबंदी को भेदकर भीतर घुसना और उनके शरीर की मशीनरी को अपने काम में लगाकर उनके माध्यम से अपनी अधिक से अधिक प्रतिलिपियां बनाना। जब कोई छींकता है तो लाखों विषाणु उसकी नाक से निकल कर हवा में फैल जाते हैं। ये विषाणु किसी स्वस्थ व्यक्ति के शरीर में घुसकर उसके माध्यम से अपनी अनगिनत प्रतिलिपियां बनवाते हैं। फिर जब वह व्यक्ति छींकने लगता है तब विषाणु उसके शरीर से निकल कर नए शिकार की खोज में निकल पड़ते हैं।

अलबत्ता, जब कोई बैक्टीरिया या विषाणु किसी जंतु के शरीर पर हमला करता है तब वह जंतु इस हमले को चुपचाप बर्दाश्त नहीं कर लेता। उसके शरीर में इन परजीवियों से लड़ने की कई योजनाएं लगातार क्रियावित होती हैं। इनमें से सबसे महत्वपूर्ण प्रक्रिया है कोशिकाओं व अणुओं के स्तर पर गठित प्रतिरक्षा तंत्र यानी इम्यून सिस्टम। हर जंतु के शरीर में उसके विशिष्ट अणु होते हैं। स्वयं की स्वस्थ कोशिकाएं कौन-सी हैं और बाहर से शरीर में घुसने वाले विषाणुओं जैसे आक्रामक पराए



जीवधारी कौन-से हैं, इसकी अचूक पहचान करके घुसपैठियों का सफाया करना प्रतिरक्षा तंत्र का काम होता है। किंतु परायों को पहचानना आसान नहीं होता और इसमें समय लगता है। उधर विषाणुओं का प्रजनन तेज़ी से होता रहता है और वे नए-नए रंग-रूप धारण करते रहते हैं। इसके चलते शिकार के प्रतिरक्षा तंत्र के लिए यह पहचानना मुश्किल हो जाता है कि पराए कौन हैं। इस लुका-छिपी में विशेष रूप से माहिर होते हैं एड्स के विषाणु। यही कारण है कि मनुष्य का प्रतिरक्षा तंत्र इनके सामने हार जाता है और फिर वह अभागा व्यक्ति (प्रतिरक्षा तंत्र कमज़ोर हो जाने के कारण) आसानी से छोटी-मोटी बीमारियों का शिकार होता रहता है।

जंतुओं का प्रतिरक्षा तंत्र इम्यूनोग्लोबुलिन नामक प्रोटीन्स और कुछ विशिष्ट सफेद रक्त कोशिकाओं के ज़रिए उत्पाती बैक्टीरिया तथा विषाणुओं पर हमला करता है। घुसपैठियों का जवाबी हमले का तंत्र भी तैयार होता है। इस तंत्र का प्रमुख हथियार होता है प्रतिरक्षा तंत्र को दबा देने वाले अणु बनाना। विषाणुओं का एक और हथकंडा यह होता है कि वे शिकार की कोशिकाओं को एक-दूसरे में घुलमिल जाने के लिए मजबूर कर देते हैं और स्वयं अपनी संख्या बढ़ाते रहते हैं। हद तब हो जाती है जब कुछ विषाणुओं का डीएनए शिकार के डीएनए में घुसकर उसका एक भाग ही बन जाता है। इसे जंतुओं द्वारा अंगीकृत विषाणु डीएनए कहते हैं। किंतु जैव विकास ऐसी मौकापरस्त प्रक्रिया है कि जंतुओं ने इसका भी फायदा उठा लिया है। इन जंतुओं के जीन्स के समूह (जीनोम) में अंगीकृत विषाणुओं का उपयोग करके ही स्तनधारी जंतुओं का पृथ्वी पर आविर्भाव हो सका। मां के लिहाज़ से तो हर गर्भ पराए अणुओं का एक समुच्चय होता है क्योंकि भ्रूण में मां के अणु तो होते ही हैं, उनके साथ पिता के पराए अणु भी होते हैं। मां के प्रतिरक्षा तंत्र की नैसर्गिक प्रवृत्ति होती है कि वह इन पराए अणुओं पर हमला करे। यानी गर्भ ठहरते ही गर्भपात हो जाए। किंतु छछूंदर से हाथी तक, चमगादड़ से व्हेल तक सभी स्तनधारी जंतुओं में यह गर्भपात टल जाता है। इसका कारण यह है कि गर्भ ठहरते ही मां के शरीर में अब तक निष्क्रिय अवस्था में पड़े अंगीकृत विषाणु सक्रिय हो जाते हैं। इनकी मदद से मां के

प्रतिरक्षा तंत्र की कार्रवाई कुछ समय के लिए स्थगित कर दी जाती है। फिर कोशिकाओं को अन्य कोशिकाओं से जोड़ने की प्रक्रिया के माध्यम से भ्रूण के इर्द-गिर्द सुरक्षात्मक आवरण यानी आंवल (प्लैसेन्टा) बनाया जाता है। इसकी आड़ में भ्रूण सुरक्षित रहता है। जैव विकास के दौरान यह प्रक्रिया कैसे विकसित हो गई यह अब तक एक पहेली है, किंतु इतना निश्चित है कि स्तनधारियों ने दुश्मन के हथियारों को बड़ी होशियारी से अपनाकर अपनी उन्नति का रास्ता साफ कर लिया है।

5. नित नए रूपों में खिलती धरती

नए-नए संसाधनों का उपयोग सीखते हुए साथ ही नए-नए पारिस्थितिक तंत्रों में प्रवेश करते हुए इस विस्तारवादी जीवजगत की उत्पादकता की विविधता का स्तर लगातार बढ़ता गया है।

वर्षा ऋतु समय पर नहीं आती है तो हम सब चिंतित हो जाते हैं। ऐसा उस वर्ष विशेष रूप से होता है जिसे एल-नीनो का वर्ष कहते हैं। जब एल नीनो नहीं होता है तब दक्षिण अमेरिकी देश पेरू के पश्चिम में प्रशांत महासागर का पानी ठंडा होता है क्योंकि उस समय सागर की गहराई में स्थित ठंडा पानी सतह पर आ जाता है। इस ठंडे पानी के साथ समुद्र के पेंदे पर जमे हुए पोषक पदार्थ भी ऊपर आ जाते हैं। इनके कारण समुद्री वनस्पति का उत्पादन बहुत बढ़ जाता है। इन पौधों को खा-खाकर समुद्री झींगों की संख्या बढ़ जाती है, जिन्हें खाकर मछलियों की संख्या भी बढ़ जाती है। फिर मछलियों को खाने वाले समुद्री पक्षी और मनुष्य इन मछलियों का खूब शिकार करते हैं। समुद्री टापुओं पर पक्षियों की बीट इकट्ठी होती जाती है जिसमें फॉस्फोरस बहुत होता है और पेरू के निवासी इसे खाद के रूप में बेचकर अच्छी-खासी कमाई कर लेते हैं।

किंतु एल-नीनो के वर्ष में यह पूरा चक्र बिखर जाता है और पेरूवासी दुख में डूब जाते हैं। पेरूवासी ही नहीं, हम भारतवासियों को भी झटका लगता है क्योंकि सागर और वायुमंडल के आपसी सम्बंध इतने दूर-दूर तक होते हैं कि एल-नीनो के वर्ष में कई बार भारत में भी कम वर्षा की

स्थिति बन जाती है।

तो ऐसी है दूर-दूर तक जुड़े हुए प्राकृतिक चक्रों की लीला। इस चक्र में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने वाले, प्रकाश की ऊर्जा का उपयोग कर सकने वाले, सीधे-सादे सायनोबैक्टीरिया पूरे साढ़े तीन अरब वर्ष पहले पृथ्वी पर प्रकट हुए थे, जबकि आज के मत्स्याहारी पनकौए यानी कार्मोरान्ट मात्र पंद्रह-बीस करोड़ वर्ष पहले ही अवतरित हुए हैं। इस लम्बी अवधि में जीवजगत की विविधता फलती-फूलती रही है, विभिन्न पारिस्थितिक तंत्रों में ऑक्सीजन और फॉस्फोरस जैसे पदार्थों और ऊर्जा के चक्र अधिकाधिक समृद्ध होते रहे हैं।

यह सब संभव हो पाता है प्राकृतिक चयन की प्रक्रिया के कारण। कुछ नया, अनोखा कर गुजरने की क्षमता ही प्राकृतिक चयन में सफलता की कुंजी है। ऊर्जा के नए स्रोतों का दोहन, नए-नए पारिस्थितिक तंत्रों में स्वयं को ढाल लेना, नई चीजों को आहार में शामिल करना, दुश्मनों से बचाव के लिए नए हथियारों, दांव-पेंचों का उपयोग करना - इन सबके उदाहरण प्रशांत महासागर के अतीत में देखे जा सकते हैं।

पौने चार अरब वर्ष पहले समुद्र की गहराइयों में ऐसे जीव प्रकट हुए जो हाइड्रोजन, लौह, गंधक के यौगिकों के अणुओं की ऊर्जा का दोहन कर सकते थे। इसका टोस सबूत तो हमारे पास नहीं है, किंतु यह निश्चित है कि साढ़े तीन अरब वर्ष पहले प्रकाश को ऊर्जा का स्रोत बना सकने वाले सायनोबैक्टीरिया फलने-फूलने लगे थे। उनके लसलसे आवरण पर चिपकी हुई रेत के कारण उनके जीवाश्म आज भी मिलते हैं।

उस शुरुआती दौर में डीएनए के लिए हानिकारक पराबैंगनी किरणें एक बड़ी चुनौती थी। उस समय वातावरण में ऑक्सीजन बहुत कम थी और पराबैंगनी किरणों को सोखने की क्षमता वाली ओज़ोन भी नहीं थी। किंतु पानी पराबैंगनी किरणों को अच्छी तरह सोख लेता है। अतः ऐसी गहराई में प्रकाश की ऊर्जा का दोहन संभव था जहां पराबैंगनी किरणों से मुक्त पर्याप्त प्रकाश पहुंचे। ऐसे ही स्थानों पर सायनोबैक्टीरिया फलने-फूलने लगे। इनके साथ

ही पानी पर तैरने वाले सायनोबैक्टीरिया और अन्य क्लोरोफिलयुक्त बैक्टीरिया भी वहां मौजूद रहे होंगे। इनके उत्पादन के कारण ही समुद्र के पेंदे में काफी मात्रा में कार्बनिक गाद इकट्ठी हो गई होगी और नाना प्रकार के बैक्टीरिया इन अवशेषों पर बसर करने लगे होंगे। इस सरल तंत्र ने धीरे-धीरे बदलते हुए पहले तीन अरब वर्ष तक अपनी सत्ता को निरंतर बनाए रखा और आज भी अधिक उन्नत जीवधारियों के साथ-साथ आधुनिक पर्यावरणों का एक भाग बना हुआ है।

इन क्लोरोफिलयुक्त बैक्टीरिया के द्वारा ऑक्सीजन के उत्पादन के कारण हवा और पानी में ऑक्सीजन की मात्रा बढ़ती गई और जीवजगत के इतिहास में रंग भरने लगा। शर्करा सभी जीवधारियों की ऊर्जा की मुद्रा है। ऑक्सीजन का उपयोग किए बिना ग्लूकोज़ के एक अणु से जितनी ऊर्जा मिल सकती है उससे पंद्रह गुना ज्यादा ऊर्जा तब मिलती है जब ऑक्सीजन का उपयोग किया जाए। मगर ऊर्जा के दोहन में ऑक्सीजन का उपयोग करने के लिए नई रासायनिक मशीनरी की आवश्यकता थी। जैव विकास की धारा में ऐसी मशीनरी बन गई और अच्छी मात्रा में ऊर्जा उपलब्ध होने से बैक्टीरिया से बहुत बड़े आकार के और अधिक जटिल संरचना वाले वनस्पति, जंतु, फफूंद बनने की राह आसान हो गई। ये एककोशिकीय जीवधारी चाबुकनुमा तंतुओं की मदद से पोषक पदार्थ के कणों को अपनी ओर खींच सकते थे। यही नहीं, कुछ जंतु तैर सकते थे और बैक्टीरिया, वनस्पतियों और अन्य जंतुओं का शिकार भी कर सकते थे।

यह ज़रूर है कि इन जीवधारियों के शरीर नरम होने के कारण इनके जीवाश्म नहीं बनते और इसलिए इनके अस्तित्व का कोई प्रमाण आज मिल नहीं सकता। अतः हमारे पास आज जो मज़बूत प्रमाण है वह केवल पिछले साठ करोड़ वर्षों का है। इस अवधि में बहुकोशिकीय जंतु अवतरित हुए जिन्होंने बड़े शरीरों की सुरक्षा के लिए अपने शरीरों को कांटों से भर लिया, कंकाल बना लिए, शरीर के बाहर सुरक्षा कवच चढ़ा लिए। इन कवचों, कंकालों को बनाने के लिए कई नई-नई जैव-रासायनिक मशीनरियों का भी

आविष्कार हुआ।

सबसे पहले बने स्पंज जिनके शरीरों पर छेद होते हैं और शरीर अंदर से खोखला होता है। ये एक ही स्थान पर स्थिर रहकर भोजन के कणों को पानी के प्रवाह के द्वारा अपनी ओर खींच लेते हैं। किंतु इस प्रकार प्रवाह के माध्यम से बहुत अधिक पोषण तो नहीं मिल सकता। समुद्र की गाद में बड़ी मात्रा में संचित भोजन के कणों को यदि केंचुए के समान निगला जा सके तो पोषण का खज़ाना ही मिल जाए। इसके लिए चाहिए ऐसा शरीर जिसमें सिर, धड़, पूंछ, मांसपेशियां और मस्तिष्क हों। साधारण कृमियों से ले कर झींगों, मधुमक्खियों, मछलियों, पक्षियों, बंदरों तक सभी जंतुओं के शरीर इसी बनावट पर आधारित हैं।

ऐसे शरीरों के कठोर भागों पर मांसपेशियों को सहारा दिया जाए तो हिलना-डुलना आसान हो जाता है। शुरुआती समय में समुद्र के पेंदे की गाद में भोजन ढूंढने वाले ट्रायलोबाइट नामक जंतुओं की बहुतायत थी जो झींगों के भाई-बंधु ही थे। ट्रायलोबाइट्स की संख्या इतनी अधिक थी कि उनके जीवाश्म संसार के लगभग सभी भागों में पाए जाते हैं। इनके साथ समुद्र की सतह पर उतराने वाले बैक्टीरिया और शैवालों की दावत उड़ाने वाले तैराक छोटे झींगे ज़रूर रहे होंगे। फिर अवतरित हुए कोनस नाम के घोंघे जो काफी तेज़-तर्रार शिकारी थे। इन्होंने ट्रायलोबाइट्स

का सफाया कर दिया और उनकी जगह ली गाद में सुरंग बना कर अपनी सुरक्षा करने वाले विभिन्न कृमियों ने। दूसरी ओर, पानी में तैरने वाले झींगों को खाने के लिए तेज़ तैरने वाली मछलियों का विकास हुआ।

अब तक ऑक्सीजन की मात्रा काफी बढ़ चुकी थी और जीवजगत समुद्र से निकल कर धरती की सतह पर फैलने लगा। इनके योगदान से जैविक उत्पादन और भी बढ़ा और नदियों के रास्ते अधिकाधिक अन्न के कण समुद्र में पहुंचने लगे। इसका परिणाम यह हुआ कि समुद्र में जीवन और अधिक फलने-फूलने लगा। पहले कीटों ने और फिर पक्षियों ने ज़मीन पर से उड़ना शुरू किया। इनमें से कई पक्षी जलचरों को खाने लगे। उनमें भी पनकौवों जैसे पक्षी गहरे समुद्र की मछलियों को खाने लगे। ये चतुर पक्षी झुंडों में शिकार करते हैं और मछलियों के झुंडों को लगभग हांकते हुए शिकार करते हैं। असुविधा से बचने के लिए वे समुद्र में प्रजनन करने की बजाय किसी टापू पर आराम से प्रजनन करते हैं। ऐसे टापुओं पर इन पक्षियों की बीट के पहाड़ बन गए हैं। खेती के लिए लाभदायक यह बीट भारत सहित पूरे संसार में बिक रही है। प्रकृति की करामात से ज़मीन, आकाश, समुद्र, ये सभी पर्यावरण आपस में मज़बूती से जुड़ गए हैं और मानव की करामात से संसार की अर्थव्यवस्थाएं भी। (स्रोत फीचर्स)

इस अंक के चित्र निम्नलिखित स्थानों से लिए गए हैं -

page 02 - http://www.newscientist.com/data/images/ns/cms/dn27114/dn27114-1_1200.jpg

page 03 - https://www.igfa.org/Images/SpeciesID_Images/BWTuna_Pacblue.png

page 10 - http://en.wikipedia.org/wiki/Tragia_involucrata#mediaviewer/File:Tragia_involucrata_06.JPG

page 11 - http://en.wikipedia.org/wiki/American_alligator#/media/File:American_Alligator.jpg

page 12 - http://en.wikipedia.org/wiki/Gerridae#/media/File:Water_strider_G_remigis.jpg

page 13 - <http://classroomclipart.com/images/gallery/Clipart/Flowers/parts-of-a-flower-petals-stigma-sepal-anther-no-labels.jpg>

page 15 - <http://www.wallpaperup.com/uploads/wallpapers/2013/07/26/122570/8fa2cba7be5cbb742a23aed5c48d4002.jpg>

page 19 - <http://www.biologycorner.com/resources/cartoon-virus-md.png>

page 25 - <http://www.vijayvani.in/wp-content/uploads/2014/01/acidity.jpg>

page 33 - http://www.nature.com/polopoly_fs/7.24370.1426090524!/image/1.17095.jpg_gen/derivatives/landscape_630/1.17095.jpg

page 37 - http://www.newscientist.com/data/images/ns/cms/mg22530090.100/mg22530090.100-1_1200.jpg

back cover - http://upload.wikimedia.org/wikipedia/commons/5/5c/ALMA_Prototype-Antennas_at_the_ALMA_Test_Facility.jpg